तमस का समाजिक सन्दर्भ

डॉ0प्रदीप कुमार यादव[1]

जार्ज लुकाच का कहना है कि 'द्वन्द्ववादी पद्धति को ठुकराने या उसे धुँधलाने से इतिहास अज्ञेय बन जाता है । इसका मतलब यह नहीं कि द्वन्द्ववाद की सहायता के बिना विशेष जनगणों या युगों का एक कमोवेश सटीक वृतान्त देना सम्भव नहीं हैं। लेकिन एक एकीकृत प्रक्रिया के रूप में इतिहास को समझने के प्रयासों को यह फलदायी अवश्य बनाता है।' अभी उत्तर – आधुनिक दौर में नवइतिहासवाद के नाम पर जो लिखा जा रहा है वह इसी खंडित दृष्टि की देन है जो अस्मिताओं का अलग – अलग विश्लेषल करती है। सामाजिक प्रक्रिया को समग्रता में देखने की अनिवार्यता को पूरी तरह उपेक्षित कर देती है और वर्ग संघर्ष की जगह चुनी हुई प्रजातियों के संघर्ष के विवरण को इतिहास की संज्ञा देती है। 'तमस' की आलोचना के पीछे इतिहास अध्ययन की यही खंडित अस्मितावादी धारणा काम करती है। विभाजन की त्रासदी साम्राज्यवादी दाँव – पेंच के शिकार भारतीय जनता की त्रासदी न रहकर हिन्दू या मुसलमान की त्रासदी बन गई है और साम्राज्यवादी षड्यन्त्र का अध्ययन करने के बजाय दो धार्मिक अस्मिताओं के तनावों के अध्ययन को महत्व दिया जाने लगा । यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है जिसे समाजशास्त्री श्यामाचरण दुबे ने इन शब्दों में निरूपित किया है 'परम्परा से जातीय गरिमा और अस्मिता के प्रश्न जुड़े हैं। भावनात्मक धरातल पर यह इतना संवेदनशील विषय है कि विशेष स्थितियों में यह ऐतिहासिक लक्ष्यों और तर्कों को भी स्वीकार नहीं करता।'

'तमस' पर लगाए गए आरोपों पर नजर डालें तो उपर्युक्त कथन प्रासंगिक मालूम पड़ता है। कहा गया है कि इस उपन्यास में हिन्दुओं की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया गया है, विभाजन पूर्व की मुस्लिम साम्प्रदायिकता का वास्तविक रूप नहीं दिखलाया गया है। जबकि उस समय मुस्लिम साम्प्रदायिकता ही निर्णायक थी। यह भी कहा गया कि दंगों की पुरी जिम्मेदारी अंग्रेजों पर डालकर मुस्लिम साम्प्रदायिकता का बचाव किया गया है जबकि हिन्दुओं के द्वारा दंगे की तैयारी को विस्तारपूर्वक दिखलाया गया है। जाहिर है कि इस रूप में की गई आलोचनाओं के पीछे यह तथ्य गौण हो गया है कि 'तमस' एक कलाकृति है, इतिहास की पृष्ठभूमि पर वर्तमान के तनावों की वास्तविकता को परखने और एक दरकी हुई साझी संस्कृति के दरारों को पाटने की मंशा से रची गई है। भ्रमित इतिहास दृष्टि कलाकृति की परतों के नीचे ढँकी वास्तविकताओं को नहीं देख सकती है , क्योंकि इतिहास अतीत का महज विवरण नहीं है । बीयर्ड ने 'द डेवलपमेंट ऑफ यूरोप' में लिखा है कि इतिहास लेखक की सबसे बड़ी सीमा रही है अतीत को वर्तमान से अलग करके देखना । इसीलिए प्रभाष जोशी ने 'तमस' को राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा दी और राजकिशोर को इसके पीछे अँधेरा दिखलाई दिया। उन्हें इस बात पर गहरी आपत्ति है कि ब्रिटिश शासक को ही साम्प्रदायिक विवादों के लिए जिम्मेदार ठहराया गया । वे कहते हैं – 'अंग्रेजों ने भारत में जो कुछ भी किया उसकी आलोचना अवश्य होनी चाहिए जो अंग्रेजो के बावजूद थे। 47 के पूर्व की मुस्लिम सामप्रदायिकता ऐसी ही एक चीज है । वह तब तीव्र हुई जब भारत को आजादी मिलना

[1] सं0 प्रवक्ता, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, एन0टी0पी0सी0 परिसर, शक्तिनगर

तय हो गया था। उसके पीछे शताब्दियों का विद्वेष तो काम कर ही रहा था , यह भय भी कार्यरत था कि स्वाधीन लोकतान्त्रिक भारत में अल्पसंख्यक मुसलमानों का क्या होगा। यह विद्वेष और भय ही जिन्ना की मूल राजनीतिक पूँजी थी। दंगे भी इसीलिए आयोजित किए गए ताकि कांग्रेस पर दबाव डाला जा सके कि वह भारत विभाजन को मंजूर कर ले।' यहाँ कई प्रश्न विचारणीय हो जाते हैं। पहला यह कि क्या आम मुसलमानों के बीच 47 के पूर्व साम्प्रदायिकता की कोई साफ राजनैतिक अवधारणा थी ? मुस्लिम लीग ने विभाजन को अपना राजनीतिक औजार बनाया मगर उसे कितने प्रतिशत मुसलमानों का समर्थन प्राप्त था ? पं0 नेहरू कहते हैं – 'भारत के अल्पसंख्यक नहीं हैं, ये धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। नस्ली तौर पर भारत एक मिश्रित प्रजातियों का देश है पर यहाँ नस्ल को लेकर कभी कोई प्रश्न नहीं उठे।' अंग्रेजों ने धार्मिक वैविध्य को नस्ली तनाव का रूप दे दिया । देखने की चीज़ है कि 1857 के गदर के समय यह नस्ली तनाव कहीं नहीं दिखलाई पड़ा और आगे चलकर मुस्लिम लीग के गठन के काफी बाद तक भी तरह की कोई अलगाववादी धारणा नहीं थी। नेहरू कहते हैं, 'मुस्लिम लीग का आम मुसलमानों पर कोई प्रभाव नहीं था, यहाँ तक कि मुसलमानों के बीच उभरते हुए मध्य वर्ग ने आम मुसलमानों को कांग्रेस की ओर जाने के लिए प्रेरित किया।' जहाँ तक 47 के पूर्व मुस्लिम साम्प्रदायिकता के निर्णायक होने की बात है, यह भी अंशतः ही सही है। यह सत्य है कि हिन्दू महासभा जैसे संगठन का भी कोई विशेष महत्व नहीं था पर हिन्दूवादी प्रवृत्तियाँ गौण नहीं थीं। स्वयं कांग्रेस में इस तरह के तत्व मौजूद थे। जिन्हें लक्ष्य करके नेहरू ने कहा था – 'सनातनी लोग जिस रफ्तार से पीछे की तरफ़ चल रहे हैं उससे हिन्दू महासभा मात खा गई है। सनातनियों में धार्मिक कट्टरता के साथ ब्रिटिश सरकार के प्रति बहुत तेज या कम से कम काफी जोरदार शब्दों में प्रकट की जानेवाली वफ़ादारी भी होती है।'

राजकिशोर जिसे शताब्दियों का विद्वेष कह रहे हैं वह वास्तव में 47 के पूर्व आम मुस्लिम जनता में नहीं दिखलाई पड़ता , अलबत्ता मुस्लिम लीग को ब्रिटिश सरकार ने बढ़ावा देकर विभाजन के लिए औजार के तौर पर उसका उपयोग किया । निम्नांकित उद्धरण इसकी पुष्टि करता है – '1946 के चुनावों में मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान एजेंडे को मुसलमानों के लिए हर मर्ज की दवा के रूप में प्रायोजित किया था जिसने उन्हें वोट देनेवाले उन मुसलमानों का समर्थन दिला दिया जो औसतन 15 प्रतिशत थे जबकि केवल 11 प्रतिशत ने ही मुस्लिम लीग को वोट दिया । ऐतिहासिक सन्दर्भों में बात करें तो मुसलमानों के एक बटे दसवें हिस्सें, वह भी ज्यादातर उच्च वर्ग की राय बाकी मुसलमानों पर थोप दी गई और उसे पूरे समुदाय का सामूहिक निर्णय बताया गया।'

यह है भारत विभाजन के सन्दर्भ में मुस्लिम साम्प्रदायिकता की वास्तविकता । हाँ, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि 1857 के गदर के दौरान हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच जो धार्मिक सौहार्द दिखलाई पड़ा था, राष्ट्रीय आन्दोलन के आखिरी दौर तक वह काफी क्षीण हो गया था और इसके लिए सिर्फ मुसलमान जिम्मेदार नहीं थे, हिन्दू भी जिम्मेदार थे। ज्ञानेन्द्र पांडेय ने अपनी पुस्तक – 'कन्स्ट्रक्शन ऑफ कम्युनलिज्म इन कोलोनियल नार्थ इंडिया'.....में ऐसे पत्रों को उद्धृत किया है जो कट्टरपंथी हिन्दूओं द्वारा लिखे गए थे। एक पत्र का मजमून यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जो 1917 में बिहार के शाहाबाद में हिन्दू–मुस्लिम तनाव के दौरान लिखा गया था:

'आगे आप लोगों को बिदित हो के हिन्दू और मुसलमान से कुरबानी के वास्ते बहुत लड़ाई है। अगर हिन्दु होए तो गौ को उबर करे। इसलिए ताकीद किया जाता है के जहाँ मुसलमान को पकड़ो वहाँ जान से मार डालो, गाँव लूट लेयो।

पतिया पच्चीस गो लिख के अपने देहात में भेज देयो। ना लिखे और ना भेजे सो बेटी पर चढ़े, जोरू का मूत पिए, बहिन का दूध पिए, माय को मुसलमान ब्याह कर दे।'

तात्पर्य यह कि धार्मिक झगड़ों में कोई नयापन नहीं था। इसने राजनीतिक रंग लिया ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के द्वारा एक तयशुदा रणनीति के तहत मुस्लिम लीग को बढ़ावा देने के कारण। यह भी एक विलक्षण बात है कि लीग की ही तर्ज पर स्वयं सावरकर द्विराष्ट्र सिद्धान्त के समर्थक थे। 'तमस' में भीष्म ने 47 के पूर्व के भारत के इसी अविश्वास और संशय भरे वातारण का चित्रण किया है और इस ओर ध्यान खींचा है कि धर्मिक वैविध्य विभाजन की साम्प्रदायिक मानसिकता में ब्रिटिशों के कारण बदला । रजनी पामदत्त के कथन से भी यह सिद्ध होता है – 'अंग्रेजों का शासन कायम होने से पहले भारत में उस तरह के हिन्दू – मुस्लिम झगड़े कभी नहीं दिखाई दिए जैसे झगड़े अंग्रेजी शासनकाल में और खासतौर से इसके अन्तिम दिनों में देखने को मिले।'

अंग्रेजों के दलाल भारतीय जमींदार और सामन्त थे और मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा, दोनों संगठनों पर यही तत्व काबिज थे। इनका उपयोग अंग्रेजों ने जनता को वर्गीय आधार पर संगठित होने से रोकने के लिए किया। ए0आर0 देसाई कहतें हैं – 'इन दोनों साम्प्रदायिक दलों पर इन सम्प्रदायों के जमींदारों और अन्य रूढ़िवादी निहित स्वार्थों का कब्जा था।' स्वयं महात्मा गांधी ने लुई फिशर से बातचीत में साम्प्रदायिकता के लिए अंग्रजों को जिम्मेदार ठहराया था। भीष्म साहनी ने 'तमस' में इसी षड्यन्त्र का चित्रण किया है – 'बहुत चालाक नहीं बनो रिचर्ड, मैं सब जानती हूँ । देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो।' शहर में हिन्दुओं – मुसलमानों के आपसी रिश्तों का चित्रण भीष्म साहनी इन शब्दों में करते हैं। – 'यह तो नहीं कहा जा सकता कि शहर के जीवन में लहरें नहीं उठती थीं, कांग्रेस के आन्दोलन चलते तो जबर्दस्त लहरें उठती थीं, हर साल गुरूपर्व के अवसर पर सिखों का जुलूस निकलता तो शहर में तनाव आ जाता, जामा मस्जिद के सामने से जुलूस बाजा बजाता हुआ निकलेगा या नहीं, उस पर पथराव होगा या नहीं ..... पर इसके बाद तनाव ढीला भी पड़ जाता और जनसाधारण के जीवन की गति फिर से इसी लय पर चलने लगती, फिर से वातावरण में स्निग्धता आ जाती, फिर से लोग हँस – खेलकर दिन बिताने लगते।'

भीष्म साहनी ने 'तमस' में ब्रिटिशों द्वारा प्रायोजित साम्प्रदायिकता का वर्णन किया है, उनका उद्देश्य यह दिखलाना नहीं है कि कौन कम साम्प्रदायिक है और कौन ज्यादा । उन्होंने हिन्दुओं को दंगे की तैयारी करते दिखलाया है तो हयातबख्श ओर मौलादाद जैसे मुसलमानों का चित्रण भी किया है जो हिन्दुओं को दंगे की तैयारी करते दिखलाया गया है उनका वर्गीय चरित्र भी देखना चाहिए । वे आम लोग नहीं हैं। बनिए और मध्यवर्गीय लोग हैं। उधर मुसलमानों के बीच भी ऐसे ही लोग हैं। मुरादअली अंग्रेजों का दलाल है, नत्थू को सूअर मारने के लिए पैसा देता है। उसे मालूम है कि इस सूअर का क्या करना है ।

'तमस' पर यह आरोप भी लगाया गया कि दंगा भड़काने में मुसलमानों की भूमिका का कम चित्रण किया गया है। यह कहने का अर्थ है कि जिस तरह हिन्दुओं को दंगे की तैयारी करते दिखलाया गया है उस तरह के खुले विवरण मुसलमानों के बारे में नहीं है। 'तमस' एक उपन्यास है। उपन्यास में जहाँ परिवेश और वातावरण का चित्रण होता है वहाँ विवरण खुले हो सकते हैं पर मनोभावों के सूक्ष्म चित्रण में, चरित्र योजना में खुले विवरण उसके कलात्मक सौन्दर्य को नष्ट कर देते हैं। क्या

मुरादअली के हाव – भाव से उसके खतरनाक इरादे का पता नहीं चलता ? जब शाहनवाज जैसे मुसलमान को लेखक हिंसक बनते हुए दिखला सकता है , क्या तब भी भीष्म साहनी पर मुस्लिम तुष्टीकरण का आरोप लगाने की गुंजाइश बची रह जाती है ? मिल्खी जैसे निरीह दयनीय नौकर की जिस बेरहमी से वह हत्या करता है क्या इससे अधिक क्रूर दिखलाया जाना सम्भव है और हत्या करने के समय उसके मनोभाव का जो चित्रण लेखक ने किया है , क्या वह इस बात को नहीं दर्शाता है कि जुनून में सभी अमानवीय हो जाते हैं, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान '.....न जाने ऐसा क्यों हुआ, मिल्खी की चुटिया पर नजर जाने के कारण मस्जिद के आँगन में लोगों की भीड़ देखकर या इस कारण कि जो कुछ वह पिछले तीन दिन से देखता – सुनता आया था। वह विष की तरह उसके अन्दर घुलता जा रहा था। शाहनवाज ने सहसा ही आगे बढ़कर मिल्खी की पीठ में जोर से लात जमाई। मिल्खी लुढ़कता हुआ सीढ़ियों के मोड़ पर सीधा दीवार से जा टकराया। जब वह नीचे गिरा तो उसका माथा फूटा हुआ था और पीठ टूट चुकी थी .....पास से गुजरते हुए उसका मन हुआ पैर उठाकर उसके मुँह पर दे मारे।'

भीष्म साहनी पर यह आरोप लगाया गया कि उन्होंने दंगे रोकने में कम्युनिस्टों की भूमिका का अतिरंजित वर्णन किया है और गांधी जी का मजाक उड़ाया है । राजकिशोर कहते हैं – 'सच तो यह है कि 1946–47 का कम्युनिस्ट उनकी निगाह में है ही नहीं .....कम्युनिस्टों ने काश उस समय इतना भी किया होता जैसा 'तमस' में दिखाया गया है तो बात कुछ और होती.....।' राष्ट्रीय आन्दोलन में कम्युनिस्टों की नकारत्मक भूमिका को एक कर्मकांड की तरह प्रस्तुत किया जाता रहा है जबकि कम्युनिस्टों ने देश की आजादी को कभी कम महत्व नहीं दिया। इस सम्बन्ध में आयोधया सिंह की पुस्तक 'हिन्दुस्तान का स्वाधीनता आन्दोलन और कम्युनिस्ट' को देखना चाहिए । उन्होंने इसमें उल्लेख किया है कि 'इडियन नेशनल कांग्रेस के 36वें अधिवेशन के समय कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से एक घोषणा पत्र प्रतिनिधियों तक पहुँचाया गया । इसी से प्रेरित होकर हसरत मोहानी ने पूर्ण स्वाधीनता की माँग रखी ।' वास्तव में राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ में कम्युनिस्टों को संदेह के घेरे में यह मानकर रखा जाता है कि वे सोवियत संघ के निर्देशों पर चलते थे। यह पूरी तरह सत्य नहीं है। अगर सत्य मान भी लिया जाए तो इस तथ्य को भी जानना होगा कि स्वयं लेनिन उपनिवेशों की स्वतन्त्रता के पक्षधर थे। उनकी पुस्तिका 'एशिया का जागरण' इसका प्रमाण है। बिपिन चन्द्रा की पुस्तक 'भारत में उपनिवेश्वाद और राष्ट्रवाद' में भी इसका उल्लेख है । यह उल्लेखनीय है कि महात्मा गाँधी ने इस माँग को बचकानापन कहा था। इसके बावजूद 'तमस' में गांधी का मजाक नहीं उड़ाया गया है जैसा कि राजकिशोर कहते हैं। उपन्यास की भाषा में अर्थ के विविध स्तर होते हैं।' इसे याद रखना चाहिए । गांधी का मजाक उड़ानेवाले लोगों का चरित्र भीष्म साहनी ने इस रूप में रचा है कि वे स्वंय अंग्रेजों की साजिश के शिकार, भटके हुए लोग हैं। यह सत्य है कि गांधी जी ने दंगे रोकने के अथक प्रयास किए, विभाजन के बारे में कहा कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा, पर ठीक 47 के पूर्व गांधी कितने अप्रासंगिक बना दिए गए थे यह छिपा हुआ तथ्य नहीं है । राजकिशोर कहते हैं कि पूरे उपन्यास में सिर्फ एक आदमी गांधी में वास्तविक आस्था रखते हुए दिखाया गया है, वह है जरनैल जो पगलैट है । क्या जरनैल सचमुच वैसा है जैसा वह दिखाई पड़ता है ? फिर 'मैला आँचल' के बालदेव जी और बावनदास भी तो जरनैल की ही तरह अप्रासंगिक , उपेक्षित और एकाकी मृत्यु को चुनता है। उधर बालदेव जी के बारे में गोपाल राय का यह कथन उल्लेखनीय है कि 'बालदेव राष्ट्रीय स्तर पर गांधीवाद के विद्रूप का प्रतीक है। उसका चित्रण एक तरफ गांधी के अहिंसा सिद्धान्त के दुर्बल पक्ष का उदाहरण है तो दूसरी तरफ गांधीवाद को विकृत रूप में प्रस्तुत करने की आलोचना भी ।'

'तमस' को कलाकृति के रूप में भी चुनौती दी गई । गोपाल राय जैसे आलोचक ने सरलीकरण का आरोप लगाया कि 'दंगे की पूरी जिम्मेदारी अंग्रेजों पर थोपकर भीष्म साहनी सरलीकरण के शिकार हो गए हैं।'17 भारत विभाजन और दंगे भड़काने में अंग्रेजों की कितनी भूमिका थी इस पर पूर्व में ही चर्चा हो चुकी है। सरलीकरण का आरोप इसलिए भी गलत साबित होता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के जुनून, मुस्लिम लीग के साम्प्रदायिक रवैये के चित्रण में लेखक ने कहीं कभी नहीं की है । तुष्टीकरण के आरोप में भी दम नहीं मालूम पड़ता क्योंकि हिन्दुओं की दयनीयता , मुसलमानों की क्रूरता के कम चित्र नहीं है इस उपन्यास में। इकबाल सिंह के साथ कलमा पढ़ने के पहले मुसलमान जिस तरह का व्यवहार करते हैं क्या इसमें उनकी मासूमियत झलकती है ? दंगे में अपने कारनामों का वर्णन करते हुए जब एक मुसलमान रस ले – लेकर वर्णन करता है कि उसके साथियों ने किस प्रकार एक निरीह हिन्दू लड़की को दबोचा और अपनी बारी आने पर उसने पाया कि वह लाश के साथ बलात्कार कर रहा है तो क्या इसमें अमानवीयता का चरम नहीं दिखलाई पड़ता । भीष्म साहनी ने 'तमस' में एक ओर जहाँ भारत में साम्राज्यवादी षड्यन्त्र के ऐतिहासिक परतों को कुरेदा है वहीं दूसरी ओर दंगे के समाज विज्ञान और मनोविज्ञान दोनों का सटीक चित्रण किया है । इनके केन्द्र में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और उसके दलाल देशी जमींदार – सामन्त और सामाजिक परिवर्तन के विरोधी हैं। नेहरू का कहना है – 'हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायिकता सही अर्थों में साम्प्रदायिकता भी नहीं वस्तुतः सामाजिक – रूढ़िवादी प्रतिक्रियात्मक शक्तियों ने साम्प्रदायिकता के मुखौटे में अपना चेहरा छिपा रखा है।'18 आगे चलकर आजादी के ठीक पहले मुसलमानों में संशय का भाव अवश्य दिखलाई पड़ता है जिसके कारण वे आक्रामक बनने के लिए मजबूर हुए। इस संशय का कारण था हिन्दुओं की तुलना में शिक्षा , व्यवसाय , प्रशासनिक सेवा बगैरह क्षेत्रों में मुसलमानों का पिछड़ा होना। अंग्रेजों ने उनके प्रति उन्हीं सन्दर्भों में लाड़ दिखलाया , जो उन्हें हिन्दुओं के प्रति असहिष्णु और संशयग्रस्त बनाते थे। साम्प्रदायिकता का यही समाज विज्ञान और मनोविज्ञान है। इसी अन्धकारपूर्ण परिदृश्य को सामने लाना 'तमस' के लेखक का मूल उद्देश्य है।

एक कलाकृति के रूप में 'तमस' की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है त्रास, भय और हिंसा के माहौल में बेहद मार्मिक प्रसंगों की योजना। यही विशेषता 'तमस' को इतिहास बनने से बचाती है और एक कलाकृति के रूप में उसके महत्व का प्रमाण है । कलाकृति के रूप में उसके महत्व को प्रमाण है। कलाकृति के रूप में 'तमस' पर आरोप इकबाल सिंह को मुसलमान बनाए जाने की घटना के वर्णन पर भी लगाया गया। उसकी सुन्नत होती है पर वह पीड़ा का इजहार नहीं करता । राजकिशोर पूछते हैं कि क्या एनेस्थीसिया का प्रयोग किया गया था ? इकबाल सिंह का काफी समय से मानसिक और भौतिक उत्पीड़न हो रहा था। लगातार पीड़ा और अपमान झेलते हुए आदमी का संवेदनशून्य हो जाना बड़ी सामान्य बात है । राजकिशोर जैसे बौद्धिक इसे नजरअन्दाज करते हैं तो आश्चर्य होता है। इसी प्रकार सूअर मारने और दंगे की तैयारी के दौरान मास्टर के द्वारा मुर्गी काटे जाने के प्रसंग में भी भिन्नता है जिसे राजकिशोर नजरअन्दाज करते हैं तो आश्चर्य होता है।

इसी प्रकार सूअन मारने और दंगे की तैयारी के दौरान मास्टर के द्वारा मुर्गी काटे जाने के प्रसंग में भी भिन्नता है जिसे राजकिशोर नजरअन्दाज करते हैं। नत्थू सूअर को पैसे के लिए मारता है। वह मुरादअली के लिए काम कर रहा है। इस काम से उसे अरूचि है। सूअर मारने का प्रसंग इसीलिए लम्बा है। यह दृश्य वीभत्स, जुगुप्सापूर्ण और घुटन भरे वातावरण को रचता है। यह प्रसंग आजादी मिलने के समय के भारतीय समाज में

छा रहे अँधेरे का संकेत भी देता है । मुर्गी काटने के पीछे जुनून है। जातीय और धार्मिक चेतना से उपजे इस जुनून को लेखक मुर्गी की हत्या के माध्यम से दिखलाना हैं। इन दोनों प्रसंगों की पृष्ठभूमि भिन्न है । यह पहले ही कहा जा चुका है कि लेखक का उद्देश्य इतिहास लिखना नहीं है। मानवीय संवेदना के विविध स्तरों को प्रतिबिंबित करनेवाले प्रसंगों की योजना ही एक कृति के रूप में इसकी विशेषता बनाना नहीं होता। इसीलिए लेखक एक हिन्दू स्त्री को जिसके माँ – बाप दंगे में मारे गए, एक मुसलमान के प्रति प्रेम समर्पण करते दिखलाता है। अगर यह प्रसंग असहज भी है तो भी ऐसे प्रसंगों को निकाल देने से 'तमस' एक कलाकृति का रूप नहीं ले पाता। यथार्थ का मतलब सिर्फ विद्रूपता का चित्रण नहीं होता, वरन विद्रूपताओं के बीच जीवन के सहज, नैसर्गिक, संवेदनापूर्ण प्रसंगों की योजना बनती है। हाँ इतना अवश्य है कि इतिहास के प्रसंग को आधार बनाकर लिखी गई रचना में डिस्टार्शन नहीं होना चाहिए । पर 'तमस' में वर्णित प्रसंगों में डिस्टार्शन नहीं है बल्कि जीवन को विविध रंगों, ध्वनियों में प्रस्तुत करना है।